

# प्रतिदिन

## स्वतंत्रता दिवस और वैचारिक आजादी

जश-ए-आजादी की 70वीं सालगिरह पर अपने प्राणों की आहुति देकर मां भारती को मुक्त करकर इबादत लिखने वाले अमर शहीदों को प्रणाम और आप सभी को शुभकामनाएं. देशभर में आज हमारे राष्ट्र की स्वतंत्रता का जश है. यह आजादी पाने के लिए हमारे पुरखों ने बड़ी कीमत चुकायी है. इसके बाद के 70 सालों में देश में लगभग हर क्षेत्र में तरक्की भी की. तरक्की का दर अब भी बना हुआ है और इसकी जिम्मेदारी युवा कंधों पर खासतौर से देखी जा सकती है. स्वतंत्रता दिवस महापर्व है. यह सभी तीज-त्योहारों से बढ़कर और हर धर्म-मजहब से बहुत ऊपर है. आजादी का मतलब सिर्फ तिरंगे को सलामी देना या हमारे क्रांतिकारियों को नमन करना भर नहीं कहा जा सकता है. माना कि शहीद क्रांतिकारी और फिरोगीयों के खिलाफ लड़ने वाला हर हिंदुस्तानी हमारे लिए पूज्यनीय है और पूज्यनीय रहेंगे, लेकिन यदि हम इस सौगात को हल्के में लेते हैं तो इन क्रांतिकारियों द्वारा देखे गये सपनों के साथ खिलवाड़ ही होगी. यह पर्व अतिरिक्त पर चिंतन, वर्तमान पर मथन और भविष्य के लिए संकल्प लेने का एक बेहतर अवसर है.

स्वतंत्रता की 70वीं वर्षगांठ पर उत्सव के पर्व के बीच कुछ अप्रिय सवाल ऐसे झांक रहे हैं, जैसे किसी मेले को अबोध बच्चे अपनी खिड़कियों से निहार रहे हों. उत्सवधर्मीयता की दलीलों में केवल लाल किले से सुनाई देनेवाली आवाज ही आमजन की जुबान नहीं है, बल्कि हर भारतवासी के मन की बात बराबरी का मायना रखती है. पिछले एक वर्ष की बात की जाए तो विचारधारा और वैचारिक आजादी को लेकर इन दिनों इस देश में अंतरद्वंद्व की स्थिति बनी हुई है. हल्के में क्यों न हो, लेकिन विरोध में उठते स्वयं को दबाने के सामंती अहंकार के अजर सुनायी दे रहे हैं. कुछ जगहों पर व्यवस्था की आड़ में बोलने आजादी के नाम पर शुरू हुआ तमाशा अब मॉब लीचिंग की घटनाओं पर पहुंच गया है. अभी व्यक्ति के अधिकार यानि संविधान में हर व्यक्ति को दी गयी बोलने की आजादी की परिभाषा लेफ्ट-राइट-सेंटर में अलग-अलग तरह से की जा रही है. इस पर बौद्धिक और राजनीतिक बहस शुरू हो गयी है. कहीं पर असहिष्णुता के विस्तार का शोर है तो कहीं गहरे-बगहरे व्याकुल मनों की आवाज भी दबाई जा रही है और यह सब संयोगवश नहीं हो रहा है, यह भी सच्चाई है. लोकतंत्र का पांचवां स्तंभ कहलाने वाले मीडिया का एक वर्ग भी आवाज दबाने की मानसिकता का शिकार होने की बात कह रहा है. दूसरी ओर अभिव्यक्ति की आजादी के नाम पर आनेवाली पीढ़ी को पीट-पीटकर हत्या के लिए उकसाने तथा ऐसे कार्यों में लगे युवाओं को सम्मानित करने वाले चेहरे भी सत्तापक्ष से हैं, यह भी संयोग नहीं.

दिल्ली की एक निर्भया के लिए कश्मीर से कन्याकुमारी तक पूरा देश एक हो गया था. पिछले कुछ दिनों दर्जन निर्भयार्यों के दर्द की आवाज सुनायी दी और अंतरमन व्याकुल हो गया. हो-हल्ला मचा, लेकिन अपने-अपने तरीके से बच्चियों के इन दर्दों की भी परिभाषा कही जा रही है. कुछ लोगों की राय में यह साजिश है तो कुछ लोगों की राय में राष्ट्रवाद ही निशाने पर आ गया है. इससे बड़ी विडंबना क्या हो सकती है कि हर घटना में राजनीति घुसेड़कर देश के प्रति आस्था को टकराव का केंद्र बनाया जा रहा है. यहां तक कि सोशल मीडिया कहलाने वाले मंच को अपने मतलब के लिए एंटी सोशल बना दिया गया है. आजादी के 70वें साल में भी विचारवाद आजादी पाने के लिए कुलबुला रहा है. ऐसा पहली बार देखने को मिल रहा है. यह शायद दुनिया के किसी देश में संभव नहीं कि देश के टुकड़े-टुकड़े कर देने का नारा लगाने वाले ही अपनी करतूत को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता से ढंकने की बेशरमी दिखाएं और उसकी निंदा करने की बजाए एक वर्ग इस तरह की कुत्सित प्रवृत्तियों को शह दे. विरोध होने पर असहिष्णुता का हल्ला मचा दिया जाए. राष्ट्रवाद को किसी एक संगठन और विचारधारा से जोड़ कर देश की संप्रभुता और उसके अस्तित्व पर सवाल उठाने की इस मानसिकता को किस तरह की आजादी माना जाए? अगर यही आजादी है तो ऐसी आजादी का क्या मतलब? ऐसे में तो हर नक्सली, आतंकवादी या अपराधी को यह आजादी मिलनी चाहिए. अपने कृत्यों के पक्ष में उनके पास भी दलीलें हो सकती हैं. व्यवस्था के खिलाफ नाराजगी एक स्वाभाविक प्रक्रिया है. उसके खिलाफ आवाज उठाने का अधिकार सभी को है. लोकतंत्र ने उसे बदलने का एक जरिया भी दिया है, न्याय संगत विरोध के और भी तमाम तरीके हैं लेकिन उसके लिए देश विरोधी होना जरूरी नहीं है. यह तो एक तरह का विक्रोह है और इसकी इजाजत किसी को नहीं दी जा सकती है.

लाचारगी यह है कि वैचारिक मर्यादा की सीमा रेखा को मानने को कोई तैयार नहीं है. बुद्धिजीवियों के लिए यह बहस का विषय बन गया है, लेकिन संविधान की शपथ के दायरे में बंधे सत्तारूढ़ राजनीतिज्ञ भी इस बीमारी से अछूते नहीं हैं. पटेल के मुकाबले गांधी - नेहरू का कद छोटा दिखाने की राजनीतिक वैचारिकता, श्रीनगर के लाल चौक में तिरंगा न फहराने देने की अलगाववादी वैचारिकता, दिल्ली में सरेआम वर्ग विशेष को मिल रही सहूलियतों के विरोध में संविधान जलाने की वैचारिकता, यह अभिव्यक्ति स्वतंत्रता के नाम पर किया जा रहा है. जेएनयू से लेकर संसद तक कुछ भी कहने और करने की आजादी की नुमाईश दिख रहे रही है. कुछ लोगों के लिए आजादी का मतलब बस यही रह गया है कि वे जो सोचें या कहें, वही पत्थर की लकीर और उसका प्रत्युत्तर देनेवाला देश का डूश्मन. कुल मिलाकर हम सभी पर यह जिम्मेदारी बनती है कि स्वतंत्रता संग्राम के यज्ञ में आहुति देनेवाले को नमन करने के साथ मिली आजादी का योग्य मूल्यमापन कर आनेवाली पीढ़ी के हाथों में तहत-तहत के झंडे और डंडे देने की बजाए उनकी कसी हुई मूठ का इस्तेमाल देश को और बलशाली बनाने में करें. यह मूठियां दुपचारियों के खिलाफ भी नहीं चाहिए. आवाज कमजोर तबकों को दबाने-कुचलने, बच्चियों को मसलने वाली मानसिकता के खिलाफ बड़े ही शोर से उठनी चाहिए, ताकि हम सच्चे मायने में आजाद भारत का नागरिक होने का गौरव हासिल कर सकें. कुर्बानियों के किस्से किताबों और कहानियों तक ही सीमित रखने के बजाए उन किस्सों को आज के नये परिवेश से जोड़कर अपने देश के नौनिहालों को स्वतंत्रता का सही मतलब समझाना भी हम सब की जिम्मेदारी बनती है.

## विक्षेपण

# किसानों की आय में इतना फर्क क्यों ?

आर्थिक सिद्धांत बिचौलियों को अक्षमता का पर्याय नहीं, बल्कि वह इन्हें अर्थव्यवस्था के पहिये को चिकनाई प्रदान करने वाला मानता है. मैथ्यू ग्रांट और मेरिडिथ स्टार्ज के ताजा अध्ययन ने दिखाया है कि दीर्घकालीन आपूर्ति ऋंखला में कुछ खास स्थितियों के तहत कई बिचौलिये प्रतिस्पर्धा को प्रेरित करके उपभोक्ताओं को फायदा पहुंचाते हैं.

भारतीय किसानों को बहुत कम राजस्व मिलता है. कम राजस्व मिलने का कारण यह है कि या तो किसान अनुत्पादक हैं या उन्हें अपने उत्पादों की कम कीमत मिलती है. उत्पादकता जहां खेती के तकनीकी पहलुओं से संबंधित है, वहीं मूल्य प्राप्ति कृषि अर्थव्यवस्था की स्थिति पर निर्भर करती है, जो बेहतर आर्थिक नीति से दुरुस्त की जा सकती है.

इकोनोमिक एंड पॉलिटिकल वीकली (2012) में प्रकाशित रमेश चंद के लेख डेवलपमेंट पॉलिसी एंड एग्रीकल्चर मार्केट्स के अनुसार, किसानों को मिलने वाले राजस्व और उपभोक्ताओं द्वारा चुकाई जाने वाली कीमतों के बीच बहुत अधिक अंतर के लिए प्रायः बिचौलियों को दोषी ठहराया जाता है. दो आम आरोप जो लगाए जाते हैं, वे यह कि उपभोक्ता तक पहुंचने से पहले मध्यस्थता की कई परतें इन दोनों के अंतर को बढ़ाती हैं, और बिचौलिये वस्तु की गुणवत्ता में कुछ जोड़े बगैर ही मुनाफा कमाते हैं. बेशक इस बात में कुछ सच्चाई हो सकती है, लेकिन बिना गंभीर पड़ताल के इसकी सच्चाई जानना मुश्किल है.

आर्थिक सिद्धांत बिचौलियों को अक्षमता का पर्याय नहीं, बल्कि वह इन्हें अर्थव्यवस्था के पहिये को चिकनाई प्रदान करने वाला मानता है. मैथ्यू ग्रांट और मेरिडिथ स्टार्ज के ताजा अध्ययन ने दिखाया है कि दीर्घकालीन आपूर्ति ऋंखला में कुछ खास स्थितियों के तहत कई बिचौलिये प्रतिस्पर्धा को प्रेरित करके उपभोक्ताओं को फायदा पहुंचाते हैं. किसान के पास खेती और अन्य गतिविधियों के लिए सीमित समय ही होता है. जैसा कि मैंने पंजाब और बिहार के इलाकों में दौर के दौरान पाया, समय एक बड़ी बाधा है, जो किसानों को अपने उत्पादों की बिक्री करने से रोकता है, जिससे बिचौलियों को पनपने का मौका मिलता है.

इसके अलावा परिवहन और विपणन के लिए खास कौशल की जरूरत होती है, जो किसानों में नहीं भी हो सकता. भंडारण की कमी और उत्पादों के एक समय बाद नष्ट हो जाने के कारण जोखिम बढ़ता है. ऋण बाजार (केडिट मार्केट) के अभाव में न केवल किसान बिचौलियों से उधार लेते हैं, बल्कि बिचौलिये भी एक-दूसरे से उधार लेते हैं. ये कारक खुदरा उपभोक्ता मूल्य और किसानों को मिलने वाले राजस्व के बीच अंतर को बढ़ाते हैं. आम तौर पर कीमतों में अंतर परिवहन लागत, प्रसंस्करण लागत और किराये के चलते होता है.

वर्तमान भारतीय संदर्भ में यह स्पष्ट नहीं है कि परिकलित

अंतर का कितना हिस्सा शुद्ध किराया है. इसे समझने के लिए ज्यादा शोध की जरूरत है. वेध लागत से किराये को अलग करने के लिए आपूर्ति ऋंखला के साथ विभिन्न बिंदुओं पर उच्च आवृत्ति मूल्य डेटा की आवश्यकता होती है जो भेरे मौजूदा अध्ययन का विषय है.

श्रम विभाजन के नजरिये से देखें, तो बिचौलिये समस्या के श्रोत नहीं हो सकते. वे बस अपनी सेवाओं और उसके जोखिम के लिए मामूली मूल्य कमा सकते हैं. इसलिए उन्हें बाहर होने के लिए बाध्य करने पर कृषि आपूर्ति ऋंखला बाधित हो सकती है, जैसा बांग्लादेश में हुआ.

यह एक आम गलतफहमी है कि बेहतर बाजारों के साथ एक ही फसल उपजाने वाले किसानों को देश भर में उनके उत्पादों का एक जैसा मूल्य मिलेगा. किसी क्षेत्र में एक वस्तु के मूल्य में वृद्धि अतिरिक्त मांग का संकेत करती है. इसके बाद आपूर्तिकर्ता उस क्षेत्र में कीमतों में कमी करने के लिए आपूर्ति बढ़ाते हैं. हालांकि वस्तुओं का परिवहन महंगा होता है और वह इतना अधिक होता है कि अच्छे बाजारों में भी परिवहन लागत के चलते कीमतों में अंतर बना रहता है.

इकोनोमिक सर्वे ऑफ इंडिया (2015-16) के मुताबिक, भारत में वस्तुओं के उच्चतम और न्यूनतम मूल्य का अनुपात अमेरिका की तुलना में लगभग तीन गुना होता है. भारतीय बाजारों में हमें वस्तुओं की विविधता और उनकी गुणवत्ता के बारे में जागरूक रहने की जरूरत है, जबकि इसकी प्रायः उपेक्षा की जाती है. अमेरिका के विपरीत भारत में वस्तुओं की कीमत बताते हुए उसकी विविधता और गुणवत्ता के बारे में नहीं बताया जाता. जबकि अमेरिका की तुलना में भारती कृषि उत्पादों की विविधता और गुणवत्ता ज्यादा व्यापक है.

अलग-अलग जगहों में एक ही वस्तु की कीमत अलग-अलग होने के कई कारक होते हैं जैसे परिवहन लागत, नियामक बाधाएं, बिचौलियों और खुदरा विक्रेताओं की स्थानीय बाजार में ताकत जो वस्तुओं के स्वतंत्र आवागमन को रोकते हैं. चूंकि ये कारक किसानों को उच्च कीमत पाने और उपभोक्ताओं को कम कीमत पर खाद्य वस्तु खरीदने से रोकते हैं, इसलिए कुल मिलाकर ये लोककल्याण को कम करते हैं. चुनौती यह पता करने की है कि कौन-सी सीमा किसानों के लिए प्रतिकूल परिणाम लाती है.

वर्ष, 2017 में मैंने देवेश कर्पूर के साथ एक लेख लिखा था भारतीय कृषि की छह पहलियां, जिसमें हमने निम्न निष्कर्ष दिए थे पहला, भारत में स्थानीय मूल्य



श्रम विभाजन के नजरिये से देखें, तो बिचौलिये समस्या के श्रोत नहीं हो सकते. वे बस अपनी सेवाओं और उसके जोखिम के लिए मामूली मूल्य कमा सकते हैं. इसलिए उन्हें बाहर होने के लिए बाध्य करने पर कृषि आपूर्ति ऋंखला बाधित हो सकती है, जैसा बांग्लादेश में हुआ. यह एक आम गलतफहमी है कि बेहतर बाजारों के साथ एक ही फसल उपजाने वाले किसानों को देश भर में उनके उत्पादों का एक जैसा मूल्य मिलेगा. किसी क्षेत्र में एक वस्तु के मूल्य में वृद्धि अतिरिक्त मांग का संकेत करती है. नीति निर्माण के लिए उपभोक्ता मूल्य व किसान को मिलने वाले मूल्य के अंतर के साथ-साथ क्षेत्रीय मूल्य अंतर को समझना जरूरी है.

भिन्नता न केवल उच्च है, बल्कि पिछले दशक में बहुत स्थिर रही है. इन दस वर्षों में नई सड़कों के निर्माण में भारी निवेश ने परिवहन लागत घटा दी है. मोबाइल फोन के विस्तार ने किसानों को कीमतों की जानकारी भी बढ़ाई है. फिर भी मूल्यों में अंतर अब भी उच्च बना हुआ है, जो दर्शाता है कि परिवहन लागत घटने और सूचनाओं के विस्तार से स्थानीय मूल्यों में भिन्नता पर बहुत कम असर पड़ा है.

दूसरी बात, हमने पाया कि कीमतों में समग्र अंतर का 37 फीसदी समय, क्षेत्रीय भिन्नता और फसलों की स्थानीय गुणवत्ता, किस्म, स्थानीय बाजार की ताकत और मिट्टी की गुणवत्ता जैसे विशिष्ट कारकों के कारण

है. कीमतों में स्थानीय भिन्नता का 20 फीसदी वैश्विक मांग में उतार-चढ़ाव के कारण है और चार फीसदी क्षेत्रीय बारिश में अंतर के कारण. प्रत्येक सूक्ष्मघटक के सापेक्ष योगदान को समझने के लिए और अधिक शोध जरूरी है.

अपने शोध में मैंने भारतीय मंडियों की बाजार शक्ति में स्थानिक विषमता को उजागर किया है. मैंने पाया कि जिन क्षेत्रों में ज्यादा मंडियां हैं, वहां के किसानों को औसतन ज्यादा मूल्य मिलता है. नीति निर्माण के लिए उपभोक्ता मूल्य व किसान को मिलने वाले मूल्य के अंतर के साथ-साथ क्षेत्रीय मूल्य अंतर को समझना भी महत्वपूर्ण है.

सौमित्र चटर्जी.

## प्रतिदिन

# ईश्वर की रचना



किर्चनर एक बहुत बड़े खगोल शास्त्री थे. उनके विषय में एक कहानी प्रचलित है. उनका एक नास्तिक मित्र था. वह हमेशा कहा करता था कि मैं ईश्वर में विश्वास नहीं करता. उस दोस्त को समझाने के लिए उन्होंने एक सरल-सा तरीका सोचा. उन्होंने पृथ्वी का एक नमूना ग्लोब बनवाया और अपने उस मित्र को अपनी सुबह चाय पर आमंत्रित किया. दूसरे दिन जब उनका मित्र आया, तो उसका ध्यान सर्वप्रथम मेज पर रखे, ग्लोब पर गया. किर्चनर उसे बार-बार उंगलियों से नचा रहे थे और आनंद ले रहे थे. मित्र ने कहा, सुंदर है, किसने बनाया. किर्चनर ने कहा- यह अपने आप बन गया. मित्र हंसने लगा. जब वह चुप हुआ तो कीर्चनर न कहा-गुम इसलिए हंसे, क्योंकि मैंने बिलकुल बेतुकी, हास्यास्पद बात कह दी. तुम्हारा हंसना ठीक है. पर जरा सोचो कि किस बात पर विश्वास करना अधिक सरल होगा, यह छोटे-सा ग्लोब स्वयं बन गया होगा या इसे किसी ने बनाया होगा.

किर्चनर ने आगे कहा कि यदि तुम्हें लगता है कि यह ग्लोब अपने आप नहीं बन सकता तो फिर यह सोचो कि वह विशाल ग्लोब, जिस पर हम रहते हैं, यह भी अपने आप कैसे बना होगा. जब तक मानव स्वयं अपनी आंखों से नहीं देख लेता, तब तक उसका किसी चमत्कार या करुणा पर विश्वास करना कठिन होता है. पर यदि गौर से देखें तो हमारे चारों ओर चक्काचौक कर देने वाले अनेक चमत्कार भरे पड़े हैं. फिर भी हम किसी प्रश्न की उत्पन्न-पुथल महसूस नहीं करते. कभी- कभी हम सोचते हैं कि यह श्रह अर्थात् हमारे पृथ्वी विषय का केंद्र है, पर सूर्य के महासागर में हमारा ग्रह एक बूंद मात्र है. अभी तक वैज्ञानिक इस ब्राह्मांड के एक छोटे-से अंश का भी निरीक्षण नहीं कर सके हैं. एक मोटे अनुमान के अनुसार यदि हम इस पूरे ब्राह्मांड की यात्रा करें, तो यात्रा में छह अरब प्रकाश वर्ष से भी ज्यादा समय लग जाएगा.

## आपकी बात

### मेरा देश

भेरे भारत का रूप निराला/ तू ही हम सबका पालनहार/तुझसे ही हम सबकी जिंदगी/सब मिल करें हमें बंदगी/सब मिल तेरा मान बढ़ाएं/दुनिया में सम्मान दिलाएं/जिते-जी कर्तव्य निभाएं/मौत भी देश के काम आए/ र आतिश' हम सब बनें नेक/ एक हमारा भारत, हम सब एक।  
लतीफशा आतिश,  
परतवाड़ा.

### हम हिन्दुस्तानी

छोड़े कल की बातें, कल की बात पुरानी/हम सब मिलकर लिखेंगे/फिर से नयी कहानी/वंशवाद का पीछ अब हम छोड़ चुके हैं/सक्षम नेतृत्व से नाता जोड़ चुके हैं/युवा पीढ़ी है आगे आई/बनकर नई जवानी/ जात-पात की बातें छोड़ा/देशप्रेम से नाता जोड़ा/ भारतीय बनकर सारे ही/अपने देश का मान बढ़ाएं/हम हिन्दुस्तानी, हम हिन्दुस्तानी.  
राजेंद्र राधव,यवतमाल.

### यह मेरा वतन



यह मेरा देश, यह मेरा वतन/हम सभी का है आजाद चमन/फूलों की कलियां/मुस्कुराती गलियां/ आजाद हवाओं का प्यारा अंजुमान/ सब ने मिल बनाया बहार ए चमन/ हर देशवासी की सच्ची लगन/इस देश की शान बढ़ाएं गगन/ 'रोजी' का भारत हम सबका वतन/हर ईसान की आजादी का चमन।  
रिजवाना सागर रोजी,परतवाड़ा.

## नेटीजन

# नायपॉल की टीस

नायपॉल ने लिखा है, मुझ जैसे दो संस्कृतियों से जुड़े लोग अंधेरों में रोशनी तलाशते हुए अधूरी जिंदगी बिताते हैं.'



जैसा यह यथार्थ में है ही नहीं. एक सदी से भी ज्यादा वक्त तक उनके परिवार के विदेश में रहने के बावजूद वह किस तरह खुद को भारतीय समझते हैं? यहां की राजनीति, समस्या आदि पर लिखने का अधिकार उन्हें कैसे मिल गया?

यहां यह साफ कर

विद्यार्थर सूरजप्रकाश नायपॉल उर्फ वीएस नायपॉल नहीं रहे. वह भारतीय मूल के ब्रिटिश नागरिकता प्राप्त लेखक थे, जिनका जन्म जिनियाद में 1932 में हुआ था. नायपॉल को जानने के लिए सबसे पहले जरूरी है, बिना किसी पूर्वग्रह के उनको पढ़ना, पर अफसोस कि भारतीय बुद्धिजीवियों में से 10 प्रतिशत ने भी उन्हें नहीं पढ़ा. उनके विरोध में एक तर्क यह दिया जाता है कि वह भारत को एक यायावर की दृष्टि से देखते हैं और इस तरह भारत का एक ऐसा भिन्न चेहरा प्रस्तुत करते हैं,

देने की जरूरत है कि नायपॉल ने खुद को कभी पूरी तरह भारतीय नहीं माना. हां, अपने पुरखों की धरती से आत्मिक लगाव के कारण वह बार-बार भारत और उसकी संस्कृति की तरफ लौटते रहे. उन्होंने लिखा है, रघुसुज जैसे दो संस्कृतियों से जुड़े लोग अंधेरों में रोशनी तलाशते हुए अधूरी जिंदगी बिताते हैं.' यह अजीब बात है कि भारतीय बौद्धिक समाज नायपॉल के लिए उदासीन रहा या फिर उनका विरोधी. अपने पूर्वजों के देश से उनके मोहभंग का यह एक प्रबल कारण रहा.

सत्याग्रह में कविता.

## स्मरण...

# संसदीय परंपराओं को जनता तक पहुंचाने वाले नेता

भारतीय संसदीय प्रणाली को आम जनता के बीच ले जाने के लिए सोमनाथ चटर्जी हमेशा याद रखे जाएंगे. उन्होंने ही लोकसभा टीवी की शुरूआत की. वे मानते थे कि भारत जैसा लोकतंत्र और यहां की संसदीय प्रणाली किसी दूसरी जगह नहीं है. लिहाजा निर्वाचित सदस्यों की बात सिर्फ दर्शक दीर्घा में बैठे लोगों तक सीमित नहीं रहनी चाहिए.



सोमनाथ चटर्जी हमेशा से ही इस बात के पक्षधर थे कि हर आदमी संसद को समझे और यहां की कार्यप्रणाली को जाने. वनाई, लोकसभा स्पीकर के रूप में उन्होंने सदन की परिपाटी व चलन और सदस्यों के अधिकार व कर्तव्य के लिए काफी काम किया. बंगाल की पार्टी ने भारतीय संसदीय परंपरा को जो तीन महत्वपूर्ण शिखरों दौं, उसकी अंतिम कड़ी का अब अवसान हो गया है. इन तीन में पहले शख्स थे, भूपेश गुप्ता, जो लगातार 5 बार राज्यसभा के सदस्य बने. और दूसरे, इंद्रजीत गुप्त, जो केंद्रीय गृह मंत्री बनने वाले पहले कम्युनिस्ट थे. छह फीट से अधिक की लंबाई और लंबी-चौड़ी काया वाले सोमनाथ दा जब सदन में आते, तो एक अलग ही ऊर्जा उनके साथ चली आती. भारी आवाज के साथ श्वादा, नमस्ते' का संबोधन उनका अपना अंदाज था. किसी से हालचाल पूछने की उनकी शैली एकदम अलग थी. कवि मुक्तिबोध के श्वादा पर तुम्हारी पॉलिटिक्स क्या है' की तर्ज पर दा सांसदों से यही पूछा करते, रकैसे हो भाई?' वह रकैसे है भाई नहीं कहते थे.'

उनका अविरल अंदाज था. वह सादगीपसंद इंसान थे. कोई तामझाम नहीं रखते थे. बंगाल की संस्कृति और उसकी परंपरा

उनके जीवन का सार था. वह प्रायः कुरता-धोती और जवाहर बास्केट (बंडी) में दिखते, जो काफी खिलता भी था उन पर.

सोमनाथ दा संसदीय परंपराओं के महान ज्ञाता थे. सदन में पूरी गंभीरता से अपनी बात रखते. भूपेश गुप्ता, अटल बिहारी वाजपेयी, इंद्रजीत गुप्त, चंद्रशेखर और सोमनाथ चटर्जी ही संसद में ऐसे नेता रहे हैं, जिनके बोलते समय पूरा का पूरा सदन खामोश होकर सिर्फ सुना करता. सोमनाथ दा को हमेशा अफसोस रहा कि उनकी हिंदी काफी कमजोर है. एक दिन वह ही उनसे बातचीत करते-करते हम हिंदी की भाषण कला पर बात करने लगे, तो उन्होंने कहा, रमैं तो अंग्रेजी और बांग्ला ही बोल पाता हूं, पर मुझे हिंदी बहुत पसंद है. मैं अटल बिहारी वाजपेयी के हिंदी भाषण का कायल हूं, काश, मैं भी वैसी हिंदी बोल पाता.'

अपनी गहरी समझदारी की बद्दौलत ही वह विपरीत पारिवारिक परिवेश से निकलकर मार्क्सवादी वैचारिक समाजवाद के दर्शन की ओर बढ़े और कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य बने. जब वह वकालत करते थे, तो अच्छा वकील होने के कारण उनकी फीस काफी होती थी. लेकिन सक्रिय राजनीति में उतरने के बाद उन्होंने सब कुछ छोड़ दिया. उनकी इसी प्रतिबद्धता ने उन्हें दस बार सांसद बनाया और सदन के शीर्ष पदों में से एक स्पीकर तक वह पहुंचे. यह सही है कि सभी दलों में वैचारिक संघर्ष करने वाला नेता पिछड़ जाता है, फिर चाहे वह कितना भी बड़ा क्यों न हो? सोमनाथ चटर्जी के साथ भी ऐसा हुआ. माकपा में उन्हें वह स्थान नहीं मिला, जो उन्हें मिलना चाहिए. पर वह हमेशा पार्टी के संसदीय दल के नेता बने रहे. अतुल अंजान.भाकपा नेता.